ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-7* August- 2021
Innovation The Research Concept

उत्तर भारत में स्वतंत्रता संग्राम के अग्रदूतः फतेहशाही

Forerunner of Freedom Struggle in North India: Fateh Shahi

Paper Submission: 14/08/2021, Date of Acceptance: 25/08/2021, Date of Publication:26/08/2021

मनोज कुमार तिवारी
सहयुक्त आचार्य,
इतिहास विभाग,
दी0द0उ0 गोरखपुर
विश्वविद्यालय, गोरखपुर,
भारत

सारांश

अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारत के लिए घोर संक्रमण का काल था। इसमें जहाँ एक तरफ मुगल साम्राज्य अपने विघटन एवं पतन के चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया वही दूसरी तरफ ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इसका फायदा उठाते हुए 1757ई0 में प्लासी का षणयन्त्रकारी युद्ध जीत कर बंगाल से भारत के औपनिवेशीकरण एवं शोषण की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी। इसके परिणाम स्वरूप प्रभावित जमींदारो, किसानों, दस्तकारों, सन्यासियों इत्यादि ने अपने शोषण, अत्याचारों एवं दासता के विरूद्ध प्रतिक्रिया करना प्रारम्भ किया। इस प्रतिक्रिया को संगठित स्वरूप प्रदान कर स्वाधीनता आन्दोलन के रूप में तब्दील कर देने का प्रारम्भिक श्रेय जाता है, तत्कालीन बंगाल सूबे के बिहार स्थित सारण जिले के हुसेपुर रियासत तथा अवध सूबे के गोरखपुर परिक्षेत्र स्थित तमकुही रियासत के जमींदार महाराज फतेह बहादुर शाही को, जिन्होंने 18वीं शदी के उत्तरार्द्ध में ही उपनिवेशवाद के वास्तविक चरित्र को समझ कर, तीन दशकों से अधिक समय तक इससे मुक्ति के लिए न सिर्फ संगठित संग्राम किया, बल्कि आम जनता के भीतर स्वतंत्रता की अलख जगा कर भारतीय स्वाधीनता संग्राम की नींव रख दी।

The second half of the eighteenth century was a period of great transition for India. In this, while on one hand the Mughal Empire reached the climax of its disintegration and decline, whereas on the other hand, the British East India Company took advantage of this, winning the strategic war of Plassey in 1757 AD and started the process of colonization and exploitation of India from Bengal.

As a result, the affected landlords, farmers, artisans, ascetics etc. started reacting against their exploitation, atrocities and slavery. The initial credit for transforming this reaction into an organized form of freedom movement goes to Maharaja Fateh Bahadur Shahi, the Zamindar of the princely state of Hussepur in Saran district of Bihar in the erstwhile Bengal province and the Tamkuhi princely state in the Gorakhpur region of Awadh province, who understood the real character of the colonialism in the second half of the 18th century, for more than three decades, Not only did an organized struggle for freedom happened, but also awakened the spirit of freedom among the common people, he laid the foundation of the Indian freedom struggle.

मुख्य शब्द / Keywords: सारण, हुसेपुर, गोरखपुर, तमकुही, बांगजोगिनी जंगल, सन्यासी, वारेन हेस्टिंग्स।

Saran, Hussepur, Gorakhpur, Tamkuhi, Bangjogini Jungal, Sanyasi, Waren Hastings.

अध्ययन का उद्देश्य

भारतीय स्वतंत्रता के 75वर्षों के उपलक्ष्य में आयोजित होने वाले अमृत महोत्सव के अवसर पर प्रस्तुत इस शोध पत्र में आधुनिक भारत में स्वतंत्रता संग्राम के इस गुमनाम अग्रदूत के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का प्राथमिक स्रोतों के आधार पर मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया गया है।

In this research paper, presented on the occasion of Amrit Mahotsav, organized to commemorate 75 years of Indian independence, an attempt has been made to evaluate the personality and creativity of this anonymous pioneer of freedom struggle in modern India on the basis of primary sources.

प्रस्तावना

अठारहवीं शताब्दी के मध्यान्ह में हुसेपुर की जमींदारी, तात्कालीन बंगाल सूबे के बिहार उप सूबे के सारण जिले में स्थित थी। इसके शासकों की एक लम्बी बंशावली है जो भूमिहार ब्राह्मणों की बघोचिया शाखा से सम्बन्धित है।[1] जबकि मझौलीराज के स्रोतों के अनुसार इस रियाशत के संस्थापक मयूर की तीसरी पत्नी जो एक भूमिहार कन्या थी, की सन्तति से हथुआ, हुसेपुर और तमकुही जमींदारियों की स्थापना हुई।[2]

'स्व' के बोध से युक्त यह राजवंश तथा इनका क्षेत्र प्रारम्भ से ही मातृभूमि को देव भूमि मानते हुए उसमें किसी भी तरह के बाहरी अथवा विदेशी हस्तक्षेप का विरोधी एवं अपनी स्वतन्त्रता का पक्षधर रहा है। स्थानीय मामलों में ये किसी भी तरह के हस्तक्षेप को सहन करने को तैयार नहीं थे। यहाँ के दबंग प्रवृत्ति के शासकों में उग्र विद्रोहात्मक तेवर पहले से ही विद्यमान थे। महाराज फतेह बहादुर शाही के दादा महाराज युवराज शाही के शासन काल में पीटर मुण्डी नामक एक अंग्रेज यात्री ने इस पूरे क्षेत्र सहित उनके दरबार की यात्रा की थी। यहाँ के लोगों की निर्भीकता, मातृभूमि के प्रति प्रेम, विदेशी हस्तक्षेप के प्रति घृणा के भाव को देखकर, उसने अंग्रेजों को इस इलाके से दूर रहने, इस क्षेत्र में व्यापार न करने की सलाह दी थी।[3] समय के साथ पीटर मुण्डी की यह सलाह काफी हद तक सही साबित हुई।

इसी वंश के 99वें शासक के रूप में महाराज सरदार शाही के पुत्र महाराज फतेह बहादुर शाही 18वीं शदी के मध्यान्ह में 1750 के आस-पास हुसेपुर रियाशत की गद्दी पर आसीन हुए।[4] यह समय भारतीय इतिहास का और उससे भी अधिक बंगाल के इतिहास का संक्रमण काल था। एक तरफ मुगल साम्राज्य अपने पतन के चरमोत्कर्ष के तरफ अग्रसर था। विदेशी आक्रमण एवं हिन्दू शक्तियों में वृद्धि के साथ ही सूबे, साम्राज्य से स्वतन्त्र होने लगे थे।[5] जमींदार नये अधिकारों का दावा कर स्वायतत्त हाने लगे थे। तो दूसरी तरफ भारत में अंग्रेज एवं फ्रांसीसी आपस में भारत के औपनिवेशीकरण के लिए संघर्षरत थे। 1757 में प्लासी के युद्ध के पश्चात बंगाल पर प्रभाव स्थापित कर अंग्रेजों ने भारत के औपनिवेशीकरण के मार्ग को प्राप्त कर लिया और बहुत तेजी के साथ वो इस मार्ग पर आगे बढ़े तथा 1764 के बक्सर के युद्ध के पश्चात् 1765 ई0 में मुगल बादशाह शाह आलम द्वितीय से इलाहाबाद की सन्धि करके 26 लाख रूपये वार्षिक पेंशन के बदले बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा के दीवानी अधिकारों के स्वामी बन गये। इसके साथ ही बंगाल एवं बिहार का राजस्व एक वर्ष में ही लगभग दो गुना हो गया। जहाँ 1764-65 में यहाँ से राजस्व वसूली एक करोड़ तेईस लाख थी वहीं 1765-66 में यह बढ़कर दो करोड़ बीस लाख रूपये तक पहुँच गयी।[6] कई अतिरिक्त कर लगा दिये गये। पारम्परिक व्यवस्था ध्वस्त करने की कोशिश की गयी। अंग्रेजों की इन उत्पीड़क औपनिवेशिक नीतियों से बंगाल के विभिन्न भागों में प्रतिरोध की शुरूआत होती है और उसकी खबरें बिहार एवं उत्तर प्रदेश की सीमा पर स्थित सारण जिले की हुसेपुर रियाशत तथा आस-पास तक पहुंचती हैं।

विषय विस्तार

दूरदर्शी, स्वाभिमानी, स्वतन्त्रताप्रेमी, हुसेपुर के धर्मनिष्ठ जमींदार, महाराज फतेह बहादुर शाही ने प्लासी के युद्ध के पश्चात् से ही अंग्रेजों के सम्भावित लक्ष्यों एवं मातृभूमि पर संकट को पहचान लिया था। यही कारण था कि बक्सर के युद्ध के समय महाराज ने मीर कासिम, सुजाउद्दौला एवं तथाकथित मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय की गठबन्धन सेनाओं का भरपूर सहयोग किया था। इसी के पश्चात अवध के नवाब से इनकी घनिष्ठता स्थापित हुई। ऐसे भी कई स्रोत मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि 1764 ई0 में नागा सन्यासियों ने भी गठबन्धन सेनाओं का साथ दिया था।[7] और यहीं से महाराज फतेह बहादुर शाही एवं नागा सन्यासियों में स्थायी सम्बन्ध कायम हुए। भविष्य में इन लड़ाकू सन्यासियों एवं नाथ पंथियों ने फतेह बहादुर शाही के लक्ष्यों को पहचान कर कई महत्वपूर्ण अवसरों पर इनका साथ दिया।

आदि शंकराचार्य के अनुयायी दशनामा अथवा दशनामी नागा सन्यासी[8] पूरे देश में तीर्थ यात्रा हेतु भ्रमण करते थे। साथ ही वे अपने धार्मिक एवं सैन्य परम्परा को बनाये रखने के लिए प्रसिद्ध थे। मुस्लिम काल में भी इन्हें तीर्थ यात्राओं के दौरान कर वसूलने हेतु बकायदा सनद प्रदान की जाती थी।[9] ये गाँवों को आपस में बांट कर लोगों से दान स्वरूप कर प्राप्त करते थे। सन्यासियों के इस कार्य को शासक वर्ग एवं सामान्य जन सहिष्णुता पूर्वक सहन करते थे। क्योंकि धार्मिक गतिविधियों के कारण सन्यासियों को आदर प्राप्त था। यद्यपि कि अंग्रेजी दस्तावेजों में इन्हें घुमन्तु डकैत इत्यादि कहा गया है। इन्हें बंगाल के अनेक जिलों में कर मुक्त भूमि प्राप्त थी।[10] परन्तु अंग्रेजों के कारण स्वतन्त्र विचारों वाले, गृहत्यागी नागा सन्यासियों के स्वाभाविक जीवन में बाधा उत्पन्न हुई। जिससे ये और इनके जैसे विचारों वाले अन्य सन्यासी विद्रोह के लिए बाध्य हुए।

सन्यासी विद्रोह एवं फतेह बहादुर शाही के विद्रोह के कालखण्ड में ही साम्यता नहीं दिखाई देती वरन् लक्ष्यों में भी एक हद तक समानता दिखाई देती है। दोनों ही राजस्व के साथ-साथ सनातन धर्म एवं संस्कृति तथा स्वतन्त्रता को महत्व देते थे और 1765 की इलाहाबाद की सन्धि के द्वारा बंगाल, बिहार, उड़ीसा की दीवानी, ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मिल जाने के पश्चात अपने लक्ष्यों को बाधित होते हुए देख रहे थे। अतः दोनों में गठबन्धन स्वाभाविक ही दिखता है। दोनों विद्रोहों को भविष्य में एक दूसरे का समर्थन प्राप्त हुआ।

बक्सर का युद्ध, महाराज फतेह बहादुर शाही के लिए एक प्रस्थान बिन्दु है। क्योंकि अपनी परम्पराओं के

अनुरूप उन्होंने इसी समय यह घोषित कर दिया था कि वो विदेशी सत्ता एवं हस्तक्षेप को स्वीकार नहीं करेंगे। इसीलिए सीमित संसाधनों के वावजूद उन्होंने गठबन्धन सेनाओं का सिर्फ साथ ही नहीं दिया बल्कि युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।[11] परन्तु दुर्भाग्यवश बक्सर की पराजय एवं अंग्रेजों को दीवानी अधिकारों की प्राप्ति ने महाराज को और भी अधिक चैकन्ना कर दिया। दूरदर्शी महाराज ने भविष्य के संकटों को पहचानते हुए अंग्रेजों के विरूद्ध मातृभूमि के रक्षार्थ अपने आप को एक सफल प्रतिरोधी शक्ति के रूप में विकसित करने के उपाय ढूढ़ने प्रारम्भ कर दिये। उन्हें पता था कि भविष्य में अंग्रेजों से प्रत्यक्ष भिडन्त होनी है। ऐसी परिस्थिति में प्रतिरोध को लम्बे अर्से तक कायम रख के विदेशी शक्ति के विरूद्ध आम जनता में स्वतन्त्रता की अलख जगाने के लिए, स्वदेशी व्यवस्था में जनता की आस्था को और दृढ़ बनाने के लिए, विरोधी शक्तियों को इकट्ठा करने के लिए एक सुरक्षित पनाहगार की आवश्यकता होगी। प्रो0 रत्नेश्वर मिश्रा ने अपने एक लेख में बताया है कि "अंग्रेजों से प्रत्यक्ष शत्रुता मोल लेने के कुछ ही दिनों पूर्व महाराज ने अवध सूबे के गोरखपुर सरकार के अन्तर्गत तमकुही की जमींदारी खरीदी थी और बाद में जब भी परिस्थितियां उन्हें सारण से पलायन करने को विवश करती थीं तो वह तमकुही में ही वास करते थे।"[12] गोरखपुर का यह क्षेत्र फतेह बहादुर शाही के लिए इसलिए भी उपयोगी था कि निकट के मझौली की रियाशत से उनके पारिवारिक सम्बन्ध थे। साथ ही बंजारों के हमलों के विरूद्ध उन्होंने इस इलाके में प्रतिरोधक[13] का कार्य करके अच्छी-खासी लोकप्रियता भी प्राप्त कर ली थी। इस तरह हुसेपुर से निर्वासित होने की स्थिति में तमकुही के बाग जोगनी अथवा भाग जोगिनी या बंक जोगिनी के घने जंगल, तमकुही के उनके सम्पर्क, अधिकार एवं प्रभाव, अंग्रेजों के विरूद्ध कार्यवाही में सहायक सिद्ध हो सकते थे। इन सबके साथ ही उनकी मौलिक जमींदारी में लोगों का असीम प्यार, स्नेह एवं स्वतन्त्रता की भावना भी उनकी मजबूत प्रतिरोधक शक्ति का आधार बना।

ऐसी परिस्थितियों में अंग्रेजों ने दीवानी अधिकारों की प्राप्ति के पश्चात् बंगाल, बिहार के राजाओं, जमींदारों से कर वसूलने उसे और बढ़ाने और उनकी निष्ठा प्राप्त करने की जब कोशिश प्रारम्भ की तो स्थानीय जमींदारों में सुगबुगाहट तेज हुई। महाराज फतेह बहादुर शाही हुसेपुर की जमींदारी का राजस्व बंगाल के नवाब के पटना स्थित खजाने में तथा तमकुही का राजस्व, अवध के नवाब के गोरखपुर स्थित खजाने में जमा कराते थे। परन्तु दिवानी अधिकारों के पश्चात, अंग्रेजी कम्पनी के सारण जिले के रवेन्यू कलेक्टर ने जब हुसेपुर के राजस्व के साथ ही महाराज से निष्ठा की मांग की तो उन्होंने कम्पनी को राजस्व देने से इंकार करते हुए स्पष्ट रूप से कहा दिया कि वो बंगाल के नवाब अथवा अवध के नवाब को ही राजस्व देगें किसी अन्य को नहीं अर्थात भारतीय गरिमा एवं स्वाभिमान से भरे महाराज ने न सिर्फ स्वयं अंग्रेजों को अपना अधिपति मानने से इंकार कर दिया बल्कि आस-पास के जमींदारों को भी इसके लिए प्रेरित किया। क्योंकि उनका मानना था कि यदि अंग्रेजों का अभी प्रारम्भिक स्तर पर ही विरोध नहीं किया गया, उन्हें हटाया नहीं गया तो इस पवित्र मातृभूमि को इनसे मुक्ति मिलने से सदियों लग जायेंगे।

यहाँ पर यह ध्यातव्य है कि मुगलों (मुस्लिमों) के साथ स्वदेशी अन्तर्विरोध के बावजूद अंग्रेजों की अपेक्षा मुगल अधिक स्वीकार्य थे क्योंकि इतिहास की एक लम्बी धारा में साथ-साथ रहते हुए मुगलों ने इस राष्ट्र को अपनी जन्मभूमि मान कर यहाँ की संस्कृति से क्रिया-प्रतिक्रिया कर एक स्थानीय चरित्र ग्रहण कर लिया था। अतः स्थानीय जमींदार एवं राजे-महराजे सनातन संस्कृति के प्रति चैतन्य रहने के बावजूद अंग्रेजों की अपेक्षा मुगलों का साथ दे रहे थे। इसका एक बड़ा कारण यह भी हो सकता है कि यह वह समय था जब यहाँ के स्थानीय जमींदारों को यह लगने लगा था कि समय के साथ कमजोर हो रहे मुगलों को अंग्रेजों की अपेक्षा भारतीय संस्कृति में समाहित कर लेना सरल होगा।

डब्ल्यू डब्ल्यू हण्टर ने स्वीकार किया है कि, फतेह शाही ने हुस्सेपुर पर अंग्रेजी दीवानी की स्थापना को 1767 में ही चुनौती दी और ऐसा करने वाले वह प्रायः प्रथम ही थे।[14] परन्तु 1767 की अपेक्षा इसे 1764 कहना अधिक तार्किक है क्योंकि बक्सर के युद्ध में ही उन्होंने अंग्रेजी शक्ति को चुनौती दे दी थी। महाराज के प्रभाव में आकर अनेक जमींदारों ने भी जैसे बेतिया के जमींदार इत्यादि ने भी विद्रोह किया पर जल्दी ही उन्होंने समर्पण कर दिया।

फतेह शाही की चुनौती को समाप्त करने के लिए जब अंग्रेजी सेना भेजी गयी तो उसे महाराज के सैनिकों ने पराजित कर भगा दिया।[15] जेमिनी मोहन घोष ने लिखा है कि 1767 ई0 में 5000 नागा सन्यासियों ने सारण में प्रवेश कर अंग्रेजों को चुनौती दी थी।[16] 20 अप्रैल, 1767 ई0 को पटना स्थित अंग्रेज फैक्ट्री के अध्यक्ष थॉमस रमबोल्ड ने भी अपने पत्र में प्रवर समिति के अध्यक्ष को यह सूचित किया था कि 5000 के करीब सन्यासी सारण जिले में प्रवेश कर चुके हैं।[17] इस प्रथम संघर्ष में महाराज विजयी हुए थे।[18] कैलेण्डर आफ पर्सियन करेसापाण्डेंस, वॉल-प्प्, में पटना के उपदिवान राजा सिताब राय के हवाले से 1768 ई0 में यह बताया गया कि हालसीपुर अथवा हुस्सेपुर के जमींदार द्वारा नागा सन्यासियों की सहायता से क्षेत्र की सुरक्षा को खतरे में डाल दिया गया है।[19] इससे यह स्पष्ट होता है कि महाराज फतेह बहादुर शाही के विद्रोह के प्रारम्भ से ही नागा सन्यासियों ने उनका घनिष्ठ रूप से साथ दिया।

इस प्रथम विजय के पश्चात् फतेह शाही अपनी स्वतन्त्रता बनाये रखने तथा इस क्रम में महाराणा प्रताप की तरह कठिनाई, संघर्ष और बलिदान का जीवन अपनाने के लिए तैयार एवं दृढ़ प्रतिज्ञ हो गये। दूसरी तरफ अंग्रेज भी उन्हें समाप्त करने अथवा सारण से निष्कासित करने के लिए

कटिबद्ध हो गये। महाराज ने अंग्रेजों के सम्भावित आक्रमण का जबाव देने के लिए पूरी तैयारी के साथ लामबन्द होकर किले में रहना प्रारम्भ किया। बिहार ने नायब दीवान सिताब राय के अनुरोध पर पुनः कैप्टन बील्डिंग के नेतृत्व में एक अंग्रेजी सेना ने 1768 ई0 में हुसेपुर पर आक्रमण किया, जमींदार ने सन्यासियों के एक दल की सहायता से प्रबल प्रतिरोध किया परन्तु परास्त होकर[20] बागजोगनी जंगलों के अपने सुरक्षित पनाहगार में परिवार के साथ रहने लगे। जो अवध सूबे का हिस्सा था और गोरखपुर सरकार को हुसेपुर से अलग करता था।[21] अंग्रेज यहाँ आक्रमण नहीं कर सकते थे। इस घटना के कुछ दिनों पश्चात् अक्टूबर, 1770 में, ब्रिगेडियर जनरल राबर्ट बार्कर ने बताया था कि दस हजार नागा सन्यासी बनारस में इकट्ठा हुए थे जो बिहार होते हुए बंगाल जाना चाहते थे। परन्तु अगले महीने पटना कौंसिल को पता चला कि वो मिर्जापुर के तरफ बढ़ गये।[22] 29 अप्रैल 1771 ई0 को पुनः राबर्ट बार्कर ने अवध के नवाब को सूचित किया किया कि आपके द्वारा प्रदान किये गये परवाने (अवध क्षेत्र से गुजरने के लिए आदेश पत्र) के आधार पर छः से सात हजार नागा सन्यासी काल्पी के पास यमुना नदी पार कर गंगा नदी को पार करने के लिए आगे बढ़े हैं परन्तु कम्पनी के बंगाल सूबे में उनके प्रवेश का कोई चिन्ह नहीं है। ऐसे और भी बहुत से उदाहरण हैं जिससे यह प्रतीत होता है कि इस पूरे इलाके में सन्यासियों का आना-जाना एवं दबदबा था।

फतेहशाही के निर्वासन के पश्चात् हुसेपुर से राजस्व वसूली का अधिकार कम्पनी ने गोविन्द राम को दे दिया।[23] अब महाराज ने अपनी मातृभूमि को बचाने के लिए, अंग्रेजों को सबक सिखाने के लिए, हुसेपुर से राजस्व संग्रह न होने देने के लिए शिवाजी की छापामार युद्ध पद्धति (गुरिल्ला युद्ध प्रणाली) को अपना हथियार बनाया। जिसका परिणाम हुआ कि पूरे सारण जिले का प्रशासन आतंक एवं अव्यवस्था का शिकार हो गया तथा कम्पनी को हुसेपुर की जमींदारी से राजस्व मिलना मुश्किल हो गया। इन्हीं परिस्थितियों में 1772 ई0 में फतेह शाही ने हुसेपुर पर अचानक हमला करके गोविन्द राम की हत्या कर दी।[24] इस सफलता के पश्चात् महराज की प्रतिष्ठा में जबरदस्त वृद्धि हुई और अब नागा सन्यासियों के साथ ही आस-पास के उत्साही समर्पित लोग उनके पास एकत्र होने लगे, स्वतन्त्रता की आकांक्षा प्रबल होने लगी। कैप्टन बिल्डिंग ने पुनः हुसेपुर लौट कर महाराज को पकड़ने की अथक कोशिश की परन्तु असफलता ही हाथ लगी। कम्पनी प्रशासन अस्त-व्यस्त हो गया। अब अंग्रेजी कम्पनी किसी भी कीमत पर महाराजा को अपने पक्ष में मिलाने को तत्पर दिखाई देने लगी। क्योंकि मराठों के सम्भावित आक्रमण के भय तथा सारण, चम्पारण, गोरखपुर एवं बनारस इत्यादि के अन्य जमींदारों से फतेह शाही के सम्बन्धों के साथ ही नागा सन्यासियों की घनिष्ठता ने कम्पनी को बेचैन कर दिया था।

क्रिस्टोफर बेली ने उस समय के छोटे जमींदारी रियाशतों खासकर मध्य गंगा घाटी के रियाशतों जिसे आनन्द ए0 यांग ने 'लिमिटेड राज' की संज्ञा दी है, की प्रकृति का चित्रण करते हुए लिखा है कि-इन छोटे राज्यों में एक तरह का भातृत्व भाव था। सामाजिक-सांस्कृतिक सरोकारों में ये एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। धार्मिक-सामाजिक मान्यताओं के साझेदार थे। उनमें आपस में मनोभावनात्मक सम्बन्ध थे। अतः आवश्यकता पड़ने पर अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए एक-दूसरे का सहयोग करते थे।[25]

ऐसी परिस्थिति में कम्पनी प्रशासन के प्रस्ताव पर रणनीति के तहत फतेह शाही ने पटना में कम्पनी के प्रतिनिधियों से सन्धि कर एक निश्चित भत्ता प्राप्त कर अपने परिवार के साथ हुसेपुर में रहना स्वीकार किया। परन्तु जब हुसेपुर की जमींदारी का नियन्त्रण उन्हें न देकर मीर जमाल को वहां का राजस्व अधीक्षक एवं महाराज के चचेरे भाई बसन्त शाही को 'बाटों एवं राज करों' की नीति के तहत वहां की जमींदारी सौंप दी गयी, यानि हुसेपुर की स्वतन्त्रता छीनने की अंग्रेजों ने कोशिश की तब महाराज मातृभूमि के रक्षार्थ पुनः विद्रोही बन बैठे। और अंग्रेजों के विरूद्ध अभियान प्रारम्भ कर दिया अब तक आते-आते यह प्रतिरोध जमींदारी अधिकारों को बचाने की अपेक्षा स्वतन्त्रता की लड़ाई बन गयी। बहुत से अन्य जमींदारों पर भी इसका प्रभाव पड़ा-नरौने, मझौली, पेरोना इत्यादि। अंग्रेजों के आधिकारिक अभिलेख फतेहशाही को लूटेरा, शांतिभंजक तथा भारतीय उपद्रव के जनक, विद्रोहियों के सरगना के रूप में देखने लगे।[26]

अब तक फतेह शाही ने हजारों की संख्या में नवयुवकों, नागा सन्यासियों, नाथपंथियों को अपने आस-पास इकट्ठा कर बड़े विद्रोह का विगुल बजा दिया। उधर बसंत शाही अंग्रेजी सेना के साथ मिलकर फतेह शाही को किसी भी तरह समाप्त करने के अभियान में लग गया। फतेह शाही ने पहले अंग्रेजों के अन्याय, दमन एवं आतंक का हवाला देते हुए परिवार एवं मातृभूमि की प्रतिष्ठा के लिए बसंत शाही को समझाने की कोशिश की परन्तु उसके न मानने पर 1775 में अचानक हमला कर हुसेपुर के निकट जादोपुर में बसंत शाही एवं मीर जमाल की हत्या कर दी।

ऐसी मान्यता है कि 1775 ई0 के इलाहाबाद कुंभ के समय फतेह शाही ने सन्यासी वेश में हुसेपुर-तमकुही-प्रयाग के रास्ते में नागा सन्यासियों से मुलाकात की थी। चुनार के सैन्य आफिसर लेफ्टिनेन्ट कर्नल म्यूर ने कम्पनी के कमाण्डर इन चीफ को सूचना दी थी कि इलाहाबाद कुंभ[27] के पश्चात् बहुत से सशस्त्र सन्यासी देखे गये हैं।[28] इसी समय गवर्नर जनरल ने बनारस के राजा चेत सिंह को इन सन्यासियों को कम्पनी की सीमाओं में घुसने से रोकने के आदेश दिये थे। परन्तु चेत सिंह ने ऐसा नहीं किया। असीत नाथ चन्द्रा, जेमिनी मोहन घोष इत्यादि ने कई प्रमाणों के आधार पर यह लिखा है कि-1775 ई0 में अवध की सीमा पर स्थित जंगल में शरण लेकर महाराज ने प्रशिक्षित सन्यासियों की एक बड़ी फौज भर्ती की थी।[29] इससे भी स्पष्ट है कि महाराज एवं नागा सन्यासियों के मध्य

घनिष्ठ सम्बन्ध थे। और वो पूर्वांचल में सन्यासियों के नेतृत्वकर्ता के रूप में उभरे।

जादोपुर के जिस बाग में बसंत शाही मारा गया वह आज भी मुड़कट्टी बाग के रूप में प्रसिद्ध है। जिस पीपल के पेड़ तले यह घटना हुई थी, उसकी बसंत शाही के वंशज आज भी पूजा करते हैं। फतेह शाही ने बसंत शाही का कटा सिर उनकी विधवा सैया देवी अथवा श्यामा देवी को भेज दिया जिसके साथ वो पति की चिता पर सती हो गयी। परन्तु ऐसी अनुश्रुति है कि सती होने से पूर्व उन्होंने अपने परिवारीजनों को यह शपथ दिलायी कि वो फतेह शाही एवं उनके बंशजों का अन्न जल कभी भी ग्रहण नहीं करेंगे। आज भी हथुआ रियासत के लोग तमकुही होकर यात्रा करने के क्रम में यहाँ अन्न जल ग्रहण नहीं करते हैं।[30]

बसंतशाही की हत्या एवं सन्यासियों से बढती घनिष्ठता के कारण जहाँ एक तरफ फतेह शाही की प्रतिष्ठा में जबर्दस्त वृद्धि हुई, हुसेपुर से राजस्व वसूली पूरी तरह ठप्प हो गयी वहीं दूसरी तरफ अंग्रेज उद्वेलित हो उठे। मई 1775 ई0 में समीप के बड़ा गाँव स्थित अंग्रेजों की सोलहवीं बटालियन के सेनापति जॉन एर्स्किन ने महाराज का पीछा किया। परन्तु बांग जोगनी के सुरक्षित पनाहगार के कारण वो कुछ भी कर पाने में असमर्थ रहा। अन्त में तंग आकर लेफ्टिनेंट एर्स्किन, साइमन रोज तथा साइमन सेज इत्यादि अंग्रेज अफसरों ने गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स को पत्र लिखा कि अतिरिक्त फौज भेजी जाय तथा अवध से सम्पर्क किया जाय।[31]

बसंत शाही की हत्या एवं अंग्रेजों की नाकामी के पश्चात् कोई भी हुसेपुर में राजस्व कृषि के दायित्व को महाराज के विरूद्ध जाकर स्वीकार करने को तैयार नहीं था। इतना ही नहीं इस समय बड़ी संख्या में युवाओं एवं नागा सन्यासियों के फतेह शाही से जुड़ जाने के कारण वो और भी शक्तिशाली हो गये थे तथा गोरखपुर एवं आसपास के अंग्रेज समर्थक लोगों से भी आर्थिक सहायता लेनी शुरू कर दी।

अंग्रेजी प्रशासन को अब यह पूरी तरह स्पष्ट हो गया कि हुसेपुर को केन्द्र बनाकर रियाशत को सम्भालना नामुमकिन है। बसंत शाही के पुत्र महेश दत्त शाही ने अंग्रेजों के संरक्षण में हथुआ को केन्द्र बनाया परन्तु महाराज के आतंक के कारण सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए अंग्रेजों ने महेश शाही को पटना भेज दिया। तथा अब गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिग्स ने अवध के नवाब आसफुद्दौला की सहायता से फतेह शाही को बाग जोगनी के जंगलों में घेरने अथवा वहाँ से बाहर निकालने की कोशिश शुरू की। अंग्रेज सेनापति ले0 हाडिंग्ज (पाँचवी बटालियन) ने गोरखपुर सरकार के फौजदार सैय्यद मुहम्मद खाँ की सहायता से यह कार्य प्रारम्भ किया परन्तु प्रयास असफल रहा। इसका एक बड़ा कारण अवध के नवाब से फतेह शाही के करीबी रिश्ते थे।[32] अंग्रेज सेनापति बड़ा गाँव लौट आया तथा 1777 में उसने कम्पनी से अतिरिक्त सेनाओं की माँग की जिससे भारतीयों के मन-मस्तिष्क में राष्ट्रभक्ति की भावना जगाने वाले फतेहशाही को पकड़ा जा सके।[33]

1777 ई0 में महाराज ने अंग्रेजों के बड़ा गाँव, लाइन बाजार स्थित सैन्य छावनी पर हमला किया तथा उसे पूरी तरह तहस-नहस कर लूट लिया। तत्पश्चात हुसेपुर के अपने किले की मरम्मत करायी तथा रियाशत के मालगुजारों से कर वसूल कर उनकी सेवा के लिए उन्हें भुगतान कर[34] हुसेपुर पर अपने स्वतन्त्र अधिकार के दावे का प्रदर्शन किया। यह फतेह शाही के प्रतिरोध का चरमोत्कर्ष था जो उनके लिए मातृभूमि के लिए स्वतन्त्रता संग्राम का हिस्सा था। इससे उनकी लोकप्रियता में और भी अधिक वृद्धि हुई।

उत्तर प्रदेश एवं बिहार में अब तक फतेह शाही अंग्रेजों के लिए काल, राष्ट्रभक्ति के प्रतीक, मातृभूमि के रक्षक के साथ ही लोगों के लिए जीते जी किंवदन्ती बन चुके थे। वारेन हेस्टिंग्स ने दिनांक 13 जनवरी, 1778 के अपने पत्र के द्वारा अब उनकी सूचना देने एवं उन्हें पकड़वाने के लिए उस जमाने में रू0 10000 (दस हजार) के ईनाम की घोषणा की। स्थानीय लोग अपने प्रजावत्सल, स्वातन्त्र्य प्रिय शासक से इतना स्नेह एवं प्यार करते थे कि उनके बल पर महाराज अंग्रेजों के प्रति आक्रामक बने रहे।[35] और अंग्रेज उनको छू पाने में भी असफल रहे।

फतेह शाही से प्रेरित होकर अनेक जमींदारों ने पहले से ही अंगे्रजों के विरूद्ध संघर्ष का विगुल बजा दिया था। इन्हीं में से एक थे मझौली के जमींदार अजीत मल्ल इन्होंने भी बिहार में पड़ने वाले अपने इलाकों के लिए अंग्रेजों को लगान देने से मना कर दिया था। परन्तु फतेह शाही से परेशान अंग्रेज पूर्वांचल में न तो नया फ्रन्ट खोलना चाहते थे ना ही यह दिखाना चाहते थे कि फतेह शाही का अन्य जमींदारों पर साकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। अतः चतुर अंग्रेजों ने जहाँ अजीत मल्ल को उसके विद्रोह के लिए माफ कर दिया वहीं फतेह शाही को सुनियोजित हत्याएं, षड़यन्त्र तथा आन्दोलन का अपराधी ठहराया।[36] अन्य विद्रोही जमींदारों में भी अंग्रेजों की रूचि इस समय नहीं थी। वो किसी भी तरह फतेह शाही के प्रतिरोध को समाप्त करना चाहते थे जो तात्कालीन समय में उनके लिए सबसे बड़ी चुनौती था। इसके लिए उन्होंने एक बार पुनः अवध से समझौता कर महाराज के विरूद्ध अभियान की कोशिश की परन्तु हुसेपुर में प्राप्त जनसमर्थन के कारण उनके विरूद्ध कोई प्रभावी कार्यवाही सम्भव नहीं हो पायी।[37]

इसी समय के आस-पास गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स का बनारस की रियाशत के साथ तनाव प्रारम्भ हुआ। बनारस की रियाशत से फतेह बहादुर शाही के पारिवारिक रिश्ते थे। जो दोनों ही रियाशतों के लिए लाभकारी थे। परन्तु अंग्रेज बनारस की महत्वपूर्ण सामरिक अवस्थिति के कारण उसे हड़पना चाहते थे। बनारस, बंगाल एवं अवध राज्य के मध्य में स्थित था। इस रियाशत को हड़प कर अंग्रेज जहाँ एक तरफ बिहार और अवध के विद्रोही जमींदारों एवं सन्यासी विद्रोहियों पर कड़ी कार्यवाही कर सकते थे, वहीं फैजाबाद की बेगमों, अवध के नवाब के साथ ही मराठों के संभावित आक्रमण पर नजर रखने

के साथ ही बनारस से अधिक राजस्व प्राप्त करने की अपनी अभिलाषा को पूर्ण कर सकते थे। बनारस के राजा चेत सिंह को अंग्रेजों की इस मनः स्थिति अथवा योजना का पूरा भान था। इसीलिए एक तरफ तो उन्होंने अंग्रेजों को सन्तुष्ट रखने की कोशिश की, जिससे उन्हें कोई अवसर न मिल सके, वहीं दूसरी तरफ अंग्रेज विरोधी माध्यमों से भी अपने सम्बन्ध बनाये रखे, जिससे किसी आपातकालीन परिस्थिति में मदद प्राप्त की जा सके। इसीलिए वारेन हेस्टिंग्स के स्पष्ट आदेश के वावजूद भी चेत सिंह ने कम्पनी शासन के विरोधी नागा सन्यासियों के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं की, साथ ही महाराज फतेह बहादुर शाही से अपनी घनिष्ठता को बनाये रखा, क्योंकि इनके माध्यम से चम्पारण एवं सारण के अन्य जमींदारों की सहायता प्राप्त हो सकती थी। इसीलिए चेत सिंह ने अनेक अवसरों पर बनारस के पूर्ववर्ती महाराज बलवंत सिंह की नीति को जारी रखते हुए महाराज फतेह बहादुर शाही की हर तरह से सहायता की। समय के साथ महाराज चेत सिंह का नजरिया सही साबित हुआ। जब 1781 ई0 में गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स ने चेत सिंह से व्यक्तिगत रंजिश के साथ ही अन्य अनेक सामरिक, राजनैतिक एवं आर्थिक कारणों के आधार पर बनारस को हड़पने की कोशिश की तब महाराज फतेह बहादुर शाही के नेतृत्व में बिहार एवं अवध के कई विद्रोही जमींदारों ने चेत सिंह के साथ मिलकर अंग्रेजों के विरूद्ध प्रारम्भ किये गये स्वतन्त्रता आन्दोलन को और व्यापक बना दिया गया।

इस तरह फतेह शाही द्वारा प्रारम्भ किया गया प्रतिरोध अब उत्तर प्रदेश एवं बिहार के अधिकांश इलाकों में अंग्रेजों के विरूद्ध स्वतन्त्रता संग्राम का प्रतीक बन गया। रिचर्ड बी0 बारनेट ने लिखा है कि-सारण के जिलाधिकारी को स्थानीय निवासियों में अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकने का दृढ़ निश्चय दिखाई पड़ने लगा।[38] हुसेपुर, तमकुही, पेरोना, नरोने इत्यादि रियाशतों के राजाओं ने आपस में व्यापक समझौता कर आठ हजार सैनिकों तथा छः तोपों की एक बड़ी सेना तैयार की। सिवान के शेख मुहम्मद अली, बेगौर एवं चैनपुर के भूमिहार जमींदार तथा अन्य कई दूसरे जमींदारों ने गुप्त रूप से फतेह शाही का सहयोग किया।[39] जिन जमींदारों, एवं उनकी जनता ने सहयोग नहीं भी किया उनमें से अधिकांश की सहानुभूति फतेह शाही के साथ थी।

इस समय गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिग्स सहित कम्पनी सरकार चेत सिंह के विद्रोह में इस कदर उलझ गयी थी कि फतेह शाही एवं अन्य जमींदारों के स्वतन्त्रता आन्दोलन पर ध्यान नहीं दे पा रही थी। इसका फायदा उठाते हुए इन जमींदारों ने जहाँ अपने आप को और भी मजबूत किया वहीं अंग्रेजों को निरन्तर परेशान किया।[40] इन जमींदारों ने उत्तर प्रदेश एवं बिहार की सीमा पर अपने सैनिकों को न सिर्फ एकत्र किया बल्कि स्थानीय लोगों को भी प्रशिक्षित कर शस्त्रों से सज्ज कर दिया।[41] अक्टूबर 1781ई0 में ही इस अभूतपूर्व संकट से निपटने के लिए कम्पनी सरकार के द्वारा पटना, लखनऊ, गोरखपुर, कानपुर, बगहा, सारण इत्यादि में कार्यरत अंग्रेज अधिकारियों को सतर्क रहने के निर्देश दिये गये। बक्सर के अंग्रेज सेनापति कैप्टन नोक्स का भी सहयोग लिया गया। इससे फतेह शाही के आन्दोलन की क्षेत्रगत व्यापकता का पता चलता है। परन्तु इसके बावजूद भी शाही को पकड़ा नहीं जा सका।[42] वो दुर्दमनीय बने रहे।

हुसेपुर एवं आस-पास के क्षेत्रों में अंग्रेजों की समस्याएं तब और बढ़ गयी जब बड़ा गाँव स्थित अंग्रेजी सेना की टुकड़ी को वारेन हेस्टिंग्स ने चेत सिंह के विरूद्ध अभियान के लिए बुला लिया। इसका लाभ उठाते हुए फतेह शाही, मझौली के अजीत मल्ल ने अन्य विद्रोहियों को साथ लेकर 2000 सैनिकों के साथ 1781 ई0 में गोरखपुर परिक्षेत्र स्थित अपने ठिकाने से बड़ा गाँव के अंग्रेजी ठिकाने पर अचानक हमला कर तहश-नहस कर दिया।[43] परिणामस्वरूप कम्पनी सरकार के द्वारा अवयस्क हथुआ शासक महेश दत्ता शाही के संरक्षक तथा हुसेपुर के राजपूत सामन्त धज्जू सिंह के सहयोग से अंग्रेज सेनापति क्रोम के नेतृत्व में एक हजार सैनिकों को महाराज के विरूद्ध अभियान के लिए भेजा गया। बड़ा गाँव से लगभग 9 किमी0 दूर मंजूरा में दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध हुआ जिसमें धज्जू सिंह एवं उसके पुत्र घायल हुए परन्तु अन्ततः फतेह शाही की पराजय हुई।[44] अंग्रेजों ने धज्जू सिंह की स्वामीभक्ति के लिए उन्हें सम्मानित करने के साथ ही 200 रू0 प्रतिमाह पेंशन दिया।[45] युद्ध में आहत एवं मारे गये सैनिकों के परिवारी जनों को भी कम्पनी सरकार ने पेंशन से नवाजा। युद्ध के पश्चात् महाराज बाग जोगनी जंगल के अपने सुरक्षित पनाहगार में वापस आ गये परन्तु कम्पनी सरकार आजिज होने के बावजूद भी हुसेपुर में उनके समर्थकों के विरूद्ध कोई कार्यवाही करने का साहस नहीं जुटा पा रही थी क्योंकि उसे डर था कि इससे राजा के समर्थन में और भी अधिक व्यापक जन आन्दोलन छिड़ जायेगा। यह राजा की लोकप्रियता तथा क्षेत्र में उनके प्रभाव का स्पष्ट प्रमाण है। आनन्द ए. यांग ने लिखा है कि-"हुसेपुर राजा के रूप में कम्पनी का ऐसे विरोधी से पाला पड़ा था जिसकी क्षेत्रीय प्रभावशाली व्यक्ति के रूप में स्थानीय समाज में गहरी जड़े थीं और वहाँ की भूमि तथा आबादी पर नियन्त्रण था।[46]

कम्पनी फतेह शाही के प्रतिरोध के दमन के क्रम में अत्यन्त ही कठिन एवं क्षतिपूर्ण आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थिति में फंस गयी थी। एक तरफ दमन के जितने भी उपाय किये जा रहे थे उससे महाराज की लोकप्रियता और भी बढ़ रही थी, विद्रोह के क्षेत्र का प्रसार हो रहा था दूसरी तरफ राजस्व संग्रह ठप हो गया था, उससे कोई फायदा नहीं था। अब कम्पनी के लिए 'करो या मरो' की स्थिति आ गयी थी। अतः कम्पनी सरकार ने फतेह शाही की सूचना देने व गिरफ्तार कराने का ईनाम बढ़ा कर रू0 20000 (रू0 बीस हजार) कर दिया।[47] चेत सिंह का विद्रोह तो कम्पनी ने दबा दिया परन्तु हुसेपुर का प्रतिरोध व्यापक होता जा रहा था।

पटना की राजस्व परिषद् ने 17 अप्रैल 1778 को

ही विद्रोही फतेह शाही की जमींदारी जब्त कर महेश दत्ता शाही को सौंपने तथा धज्जू सिंह को उसका दीवान घोषित करने की अनुशंसा की थी। परन्तु कलकत्ता की सर्वोच्च परिषद् सुरक्षा, इत्यादि कारणों से अभी भी महेश दत्ता शाही को राजा घोषित करने के पक्ष में नही थीं।[48] किन्तु अन्ततः बार-बार के अनुरोध के पश्चात वह इस शर्त के साथ तैयार हो गयी कि महेश दत्ता शाही, फतेह शाही के विद्रोह का दमन करें और इसमें असफल रहने पर अपनी जमींदारी का दावा छोड़ देगें।[49]

इन सूचनाओं के कारण महाराज फतेह बहादुर शाही को अत्यन्त दुःख हुआ और वो छोभ के कारण विचलित होने लगे। क्योंकि उन्हें एक तरफ यह लगा कि शाही परिवार की परम्पराओं के अनुरूप उन्होंने राज्य एवं परिवार की प्रतिष्ठा के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ी, परन्तु उनके ही वंशज सब कुछ गँवाने के लिए तैयार हैं। साथ ही इस अत्यधिक लम्बे संघर्ष ने अनेक ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जिससे 1787-1788 ई0 से उनका मनोबल कमजोर पड़ने लगा। इसके बावजूद उन्होंने हुसेपुर खोने के पश्चात 1790 ई0 में तमकुही रियाशत की गद्दी अपने छोटे पुत्र रण बहादुर शाही को सौंप कर 1795 ई0 तक अंग्रेजों के साथ सक्रिय संघर्ष को बनाये रखा। 1795 ई0 में फतेह बहादुर शाही के चम्पारण अभियान का विवरण प्राप्त होता है।[50] जिसमें उन्होंने कम्पनी समर्थकों के सोलह सौ मवेशियों पर कब्जा कर लिया था।[51]

परन्तु 1787-88 से महाराज का करिश्मा कम होने लगा था। उनकी अपनी जीजिविषा के बावजूद भाई बन्धुओं एवं समर्थकों का समर्थन कम होने लगा था। चेत सिंह को बनारस से बेदखल करने के कारण उनकी तरफ से मिलने वाली सहायता का अन्त हो गया। साथ ही नागा सन्यासियों के बढ़ते दमन के कारण उनकी भी सक्रिय मदद खत्म हो गयी। अधिकांश विद्रोही सामन्त अंग्रेजों द्वारा पराजित किये जा चुके थे। अतः उनके गठबन्धन एवं सहायता की उम्मीद भी जाती रही। भारत में अंग्रेज बहुत तेजी से आगे बढ़ रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में महाराज फतेह बहादुर शाही के लिए अपना सक्रिय प्रतिरोध जारी रखना अत्यन्त दुष्कर हो गया। अतः महाराज ने परिस्थिति जन्य निर्णय लेते हुए अंग्रेजों के हाथ में पड़ने की अपेक्षा अज्ञातवास ग्रहण कर सन्यासी जीवन अपना लिया।

महाराज फतेह बहादुर शाही के अन्तिम दिनों के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है। उनकी मृत्यु की वास्तविक तिथि एवं तरीका तो ज्ञात नहीं है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अन्तिम समय में मातृभूमि की रक्षा न कर पाने का मलाल उनके दिल में अवश्य था। फिर भी हुसेपुर एवं तमकुही के परिदृश्य से अदृश्य होने के बावजूद अनेक दशकों तक वो हथुआ के शासकों एवं अंग्रेजों के लिए आतंक का कारण बने रहे। और तब तक अंग्रेजों ने हथुआ राज्य को वैधानिक मान्यता नहीं दी जब तक उन्हें यकीन नहीं हो गया कि महाराज दुनिया में नहीं होगें। महाराज के प्रतिरोध की गौरव गाथा को उनके कार्यों के आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है। प्रथम बक्सर के युद्ध से 1795 ई0 तक काल जिसे सक्रिय प्रतिरोध का काल कहा जा सकता है और द्वितीय 1795 के पश्चात का काल जो निष्क्रिय प्रतिरोध का काल था। दोनों ही कालों में फतेह शाही अंग्रेजों के लिए समान रूप से आतंक के कारण रहे।

निष्कर्ष

तीन दशक से अधिक समय तक महाराज फतेह बहादुर शाही लगातार न सिर्फ अंग्रेजी सत्ता को कड़ी टक्कर देते रहे वरन् कई बार उन्हें पराजित कर उनके सैन्य अड्डों को तबाह कर, उनके अन्दर खौफ पैदा किया। कई अंग्रेज अधिकारियों के पत्रों से यह स्पष्ट होता है कि वो उनके लिए मराठों से भी अधिक डर एवं परेशानी के कारण बने। विभिन्न प्रकार के षड़यन्त्रों एवं कुचक्रों के वावजूद अंग्रेज उन्हें पकड़ने अथवा सजा देने में असफल रहे। यद्यपि कि उन्होंने हुसेपुर रियाशत से महाराज की स्मृतियों को मिटाने के क्रम में उनके महल एवं अन्य सम्पत्तियों को पूरी तरह नष्ट कर दिया फिर भी रियाशत की जनता के दिलों से महाराज के प्रति प्यार, अनुराग एवं समर्पण को मिटाने में असफल रहे। इतना ही नहीं महाराज ने अंग्रेजी सत्ता को चुनौती देते हुए उनके सामने ही तमकुही की नयी रियाशत स्थापित कर दी जो अंग्रेजों के लिए अधिक हानिकारक साबित हुई। उन्होंने नाना प्रकार के कष्टों को सहते हुए वर्षों जंगल को पनाहगार बना कर उपनिवेश विरोधी शक्तियों को इकट्ठा कर अंग्रेजों के खिलाफ छापामार युद्ध चलाया तथा आम जनता के दिलों में स्वतन्त्रता की अलख जगायी। इस दृष्टि से महाराज फतेह बहादुर शाही, महाराणा प्रताप, बीर शिवाजी तथा बिहार के कुँवर सिंह इत्यादि की श्रेणी में स्थान पाने के हकदार हैं।

सन् 1757 से ही अंग्रेजी औपनिवेशिक नीतियों के विरूद्ध विद्रोहों की भी शुरूआत होती है। कुछ विद्रोह ऐसे भी थे जो दशकों तक चले, परन्तु पहला संगठित विद्रोह, जो अन्य उपनिवेश विरोधी शक्तियों को साथ लेकर सबल नेतृत्व के साथ प्रारम्भ हुआ और सबसे लम्बे समय तक चला, वह था महाराज फतेह बहादुर शाही का विद्रोह। जिसने प्रारम्भ में ही औपनिवेशिक सत्ता को झकझोर दिया। यही कारण है कि अंग्रेजों ने पूरी बर्बरता के साथ महाराज के नामों-निशान को मिटाने की कोशिश की। जिससे भविष्य में आमजन उससे प्रेरणा लेकर अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध खड़े न हो सकें। परन्तु महाराज की साहसिक, क्रान्तिकारी एवं राष्ट्रवादी गतिविधियों ने उन्हें जनता के आदर का पात्र बना दिया। लोक गीतों, कविताओं, कहानियों इत्यादि के माध्यम से आज भी महाराज फतेह बहादुर शाही आम जनमानस की स्मृतियों में रचे-बसे हैं।

भारत में औपनिवेशिक सत्ता के प्रथम प्रभावशाली प्रतिरोधक शक्ति के रूप में, उपनिवेश विरोधी शक्तियों के प्रारम्भिक संगठनकर्ता के रूप में, बिहार एवं उत्तर प्रदेश में सन्यासी विद्रोहियों के नेतृत्वकर्ता के रूप में, अपनी जमींदारियों के अत्यधिक लोकप्रिय एवं समाद्धृत शासक के रूप

में महाराज फतेह बहादुर शाही के त्याग, तपस्या, बलिदान एवं उनकी दूरदर्शिता तथा नेतृत्व क्षमता ने आधुनिक भारतीय इतिहास में एक गौरवशाली अध्याय को जोड़ा है। उनके काल खंड को भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के उदभव अथवा प्रथम चरण के रूप मे देखना न्यायोचित होगा । उनके व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सांगठनिक क्षमता पर प्रभावशाली, विस्तृत एवं सम्यक शोध भारतीय प्रतिरोध के इतिहास को एक नया आयाम प्रदान कर सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *देवेन्द्र नाथ दत्ता, ए ब्रीफ हिस्ट्री आफ द हथुआ राज, (पब्लिश्ड अण्डर द अथारिटी आफ हर हाइनेस द महारानी साहिबा आफ हथुआ, कलकत्ता 1909), पृ011*
2. *एडबिन टी0 एटकिन्सन (स0), स्टैटिस्टिकल, डेसक्रिप्टिव् एण्ड हिस्टोरिकल एकाउण्ट आफ द नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज आफ इण्डिया, वॉल.VI, पार्ट-II गोरखपुर, (गवर्नमेंट प्रेस, इलाहाबाद, 1881), पृ0 450*
3. *अक्षयवर दीक्षित (सं0), भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम का प्रथम वीर नायक में प्रकाशित भोलानाथ सिंह का लेख, (अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2007), पृ0 97-98*
4. *वही, पृ0 73; जे0एन0 सिन्हा, विनेट्स फ्रॉम द एज आफ वार, (द हिन्दू, 21 मई, 2011), www.thehindu.com>magazin*
5. *असित नाथ चन्द्रा, द सन्यासी रिबेलियन, (रत्ना प्रकाशन, कलकत्ता, 1977), पृ0 प्.प्प्*
6. *वही, पृ0 146*
7. *जेमिनी मोहन घोष, सन्यासी एण्ड फकीर रेडर्स इन बंगाल, (बंगाल सेक्रटरिएट बुक डिपो, कलकत्ता, 1930), पृ0 16*
8. *वही, पृ0 12*
9. *असित नाथ चन्द्रा, पूर्वोक्त, पृ0 17*
10. *जे0सी0 सेन गुप्ता (सं0), डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, मालदा, (गवर्नमेन्ट पब्लिकेशन, कलकत्ता, 1969), पृ0 57; डिस्ट्रिक्ट गजेटियर वेस्ट दीनाजपुर, (गवर्नमेन्ट पब्लिकेशन, कलकत्ता, 1965), पृ0 48-49*
11. *अक्षयवर दीक्षित, पूर्वोक्त, पृ0 73; राजबली पाण्डेय, गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, (ठाकुर महातम राव ओमप्रकाश, रेती चैक, गोरखपुर, 2015), पृ0 283*
12. *प्रो0 रत्नेश्वर मिश्रा, "हुसेपुर का फतेहशाही: राज्य विरोधी अथवा स्वतन्त्रता सेनानी", इतिहास दृष्टि, वर्ष-1, अंक-1, (हीरापुरी कालोनी, विश्वविद्यालय परिसर, गोरखपुर, मई, 2010) पृ0 117*
13. *राजबली पाण्डेय, पूर्वोक्त, पृ0 283-84; देखें: एच0आर0 नेविल, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स आफ द युनाइटेड प्रोविन्सेज आफ आगरा एण्ड अवध, वॉल XXXI गोरखपुर (गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद, 1909)*
14. *डब्लू. डब्लू. हण्टर, स्टैटिस्टिकल अकाउन्ट आफ बंगाल, वॉल VI डिस्ट्रिक्ट आफ पटना एण्ड सारण, (ट्रबनर एण्ड कम्पनी, लन्दन, 1877), पृ0 369*
15. *वाई0एन0 दत्ता, हिस्ट्री आफ हथुआ राज, जर्नल आफ द एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, वॉल-73 (एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, 1904), पृ0 186*
16. *जेमिनी मोहन घोष, पूर्वोक्त, पृ0 39*
17. *राम लखन शुक्ल (सं0), आधुनिक भारत का इतिहास, (हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली वि0वि0, दिल्ली, 1998), पृ0 207*
18. *अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम: अठारहवीं एवं उन्नीसवीं सदी के विद्रोह, (प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2001), पृ0 30; वाई0एन0 दत्ता, पूर्वोक्त, पृ0 186*
19. *कैलेण्डर आफ पर्सियन करेसपाण्डेन्स, वॉल-II, 1767-9, (सुपरिनटेन्डेन्ट, गवर्नमेन्ट प्रिटिंग, कलकत्ता, 1914), पृ0 262-63*
20. *वही, पृ0 263*
21. *पी0सी0 राय चैधरी, बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स: सारण, (सुपरिनटेन्डेन्ट, सेक्रेटरिएट प्रेस, बिहार, पटना, 1960), पृ0 87*
22. *असित नाथ चन्द्रा, पूर्वोक्त, पृ0 40*
23. *पी0सी0 राय, चैधरी, पूर्वोक्त, पृ0 87*
24. *वही*
25. *विस्तृत अध्ययन के लिए देखें: सी0ए0 बेली, रूलर्स टाउन्समेन एण्ड बाजार्स: नार्थ इण्डियन सोसाइटी इन द एज आफ ब्रिटिश एक्सपैन्शन: 1770-1870, (कैम्ब्रिज, साउथ एशियन स्टडीज, 1983)*
26. *आनन्द ए0 यांग, द लिमिटेड राज: अग्रेरियन रिलेशन्स इन कोलोनियल इण्डिया, सारण डिस्ट्रिक्ट, 1793-1920, (ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1989), पृ0 64*
27. *जेमिनी मोहन घोष, पूर्वोक्त*
28. *सेक्रेट डिपार्टमेन्ट ओरिजिनल कन्सल्टेशन्स नं0 04 डेटेड 30 मार्च, 1775*
29. *असित नाथ चन्द्रा, पूर्वोक्त, पृ0 65; जेमिनी मोहन घोष, पूर्वोक्त, पृ0 68*
30. *अक्षयवर दीक्षित, पूर्वोक्त, में प्रकाशित जगत नारायण सिंह का लेख, पृ0 60*
31. *वही*
32. *वही*
33. *गिरीन्द्र नाथ दत्ता, हिस्ट्री आफ हथुआ राज, (बॉकीपुर, 1905), पृ0 189*
34. *रेवेन्यू काउन्सिल, पटना के प्रधान का गवर्नर जनरल इन काउन्सिल को पत्र, 6 फरवरी, 1777*
35. *अक्षयवर दीक्षित, पूर्वोक्त, में प्रकाशित कुलदीप नारायण राय का लेख, पृ0 64*
36. *हुसेपुर के मालगुजार मुहम्मद मुर्शरफ की अर्जी, प्रोसिडिग्स ऑफ द काउन्सिल ऑफ रेवेन्यू, पटना, अगस्त 4 से दिसम्बर 31, 1777*
37. *बड़ागॉव से ले0ज0 हार्डिंग का राजस्व परिषद को प्रधान साइमन ड्रोज को पत्र, 8 एवं 15 जनवरी, 1777, पटना रेवेन्यू कन्सल्टेशन्स, 20 जनवरी से 31 जुलाई, 1777*
38. *रिचर्ड बी0 बार्नेट, नार्थ इण्डिया बिटवीन एम्पायर्स: अवध, द मुगल एण्ड द ब्रिटिश, 1720-1801, (युनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले एण्ड लॉस एन्जालिस, 1980), पृ0 184-185*
39. *चार्ल्स क्रोम का बंगाल राजस्व परिषद को पत्र, 15 सितम्बर, 1781, बंगाल रेवेन्यू कन्सल्टेशन, 1 सितम्बर, से 23 अक्टूबर, 1781*
40. *आनन्द ए0 यांग, पूर्वोक्त, पृ0 68*
41. *गिरीन्द्र नाथ दत्ता, पूर्वोक्त, पृ0 189*
42. *वही*
43. *वही, पृ0 190*
44. *वही, पृ0 191*
45. *वही, पृ0 192*
46. *आनन्द ए0 यांग, पूर्वोक्त, पृ0 67*
47. *गिरीन्द्र नाथ दत्ता, पूर्वोक्त, पृ0 192*
48. *वही, पृ0 193*
49. *प्रोसीडिंग्स आफ द कमेटी ऑफ रेवेन्यू, 02 नवम्बर, 1784*
50. *आर0एल0 शुक्ला, पूर्वोक्त, पृ0 203-204; प्रो0 रत्नेश्वर मिश्रा, पूर्वोक्त, पृ0 125*
51. *वही*